REVIEW OF RESEARCH
ISSN: 2249-894X
IMPACT FACTOR : 5.7631(UIF)
VOLUME - 12 | ISSUE - 3 | DECEMBER - 2022

महाभारतकालीन रीति–रिवाज एवं रहन–सहन का अध्ययन

डॉ. रेनू शुक्ला[1] & बरसाइत दास महन्त[2]
[1]असिस्टेण्ट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग,
डॉ. सी. व्ही. रामन् विश्वविद्यालय कोटा, बिलासपुर (छ.ग.)
[2]शोधार्थी (संस्कृत) डॉ. सी. व्ही. रामन् विश्वविद्यालय कोटा, बिलासपुर (छ.ग.)

सारांश

प्रस्तुत शोध पत्र में महाभारतकालीन रीति–रिवाज एवं रहन–सहन के विषय में प्रकाश डाला गया है। उस समय के रीति–रिवाज, परम्परा, खान–पान, रहन–सहन, पहनावा–ओढ़ावा, आचार–विचार, धर्म, आस्था एवं विश्वास आदि का सारगर्भित वर्णन किया गया है। महाभारतकाल के लोगों का धर्म पर गहरी आस्था थी। वे वर्ण–व्यवस्था, आश्रम–व्यवस्था, संस्कार एवं पुरुषार्थ पर विश्वास करते थे। वे जादू–टोना तथा भूत–प्रेत के अस्तित्व पर भी विश्वास करते थे। इस युग में यज्ञ एवं कर्म काण्ड का विशेष महत्व था। इस काल में दर्शन के क्षेत्र मे भी उन्नति हुई। महाभारतकाल में माता के रूप में नारी का बहुत सम्मान था, फिर भी इस युग में नारियों की दशा अच्छी नहीं कही जा सकती क्योंकि इसी युग में द्रौपदी का चीर हरण करने का प्रयास किया गया, नारी को द्यूत एवं मदिरा की श्रेणी में रखा गया था। इस काल के लोगों को सोना, चाँदी, ताँबा, काँसा आदि धातुओं के साथ–साथ आयरन (लोहे) का भी ज्ञान था। लोहे के अस्त्र–शस्त्र एवं अन्य औजार बनाए जाते थे। इस युग में कृषि एवं पशु–पालन लोगों का मुख्य व्यवसाय था। इस प्रकार इस शोध–पत्र में महाभारतकालीन रीति–रिवाज एवं रहन–सहन पर प्रकाश डालते हुए कुछ अज्ञात एवं रहस्यमयी बातों को उद्घाटित करने का प्रयास किया गया है।

शब्द कूट :– कुमारी, वर्या, अयस, ओदनं, नीवी, निष्क।

प्रस्तावना

'महाभारत' हमारा जातीय सांस्कृतिक इतिहास का एक महान् एवं महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। भारतीय साहित्य में वेदों के पश्चात् यदि कोई प्राचीन सर्वमान्य ग्रन्थ महाभारत है। 'महाभारत' भारतीय साहित्य का ही नहीं, अपितु विश्व–साहित्य का भी सबसे बड़ा काव्य–ग्रन्थ है; जो वर्तमान में एक लाख श्लोकों मे उपलब्ध होने के कारण 'शत–साहस्त्री–संहिता' के नाम से भी जाना जाता है। इसमें महाकाव्य के समस्त लक्षण विद्यमान हैं।

वास्तव में 'रामायण और 'महाभारत' हमारी भारतीय संस्कृति के इतिहास हैं, इनमें सांस्कृतिक जीवन की प्रधानता है, ऐतिहासिक घटना क्रम गौण हैं। इसीलिए इन्हें जातीय इतिहास की संज्ञा से भी अभिहित किय है। श्री हरिदत्त वेदालंकार कहते है कि– 'महाभारत केवल कौरवों–पाण्डवों के संघर्ष की कथा ही नहीं, किन्तु भारतीय संस्कृति और हिन्दू धर्म के सर्वांगीण विकास का प्रदर्शक एक विशाल विश्व कोश है। इसमें उस समय के धार्मिक, नैतिक, दार्शनिक और ऐतिहासिक आदर्शों के अमूल्य और अक्षय संग्रह हैं। मानव जीवन का कोई ऐसा पहलू या समस्या नहीं है, जिस पर इसमें विस्तार से विचार न किया गया हो इसलिए महाभारत का यह

दावा सर्वथा सत्य है कि–''धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के सम्बन्ध में जो बात इस ग्रन्थ में है, वही अन्यत्र भी है। जो इसमें नहीं है, वह कहीं भी नहीं है।''

धर्मे चार्थे च कामे च मोक्षे च भरतर्शभ।
यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत्क्वचित्।।[1]

के अनुसार महर्षि व्यास ने महाभारत को अर्थशास्त्र, धर्मशास्त्र के साथ–साथ काम एवं मोक्ष शास्त्र की भी संज्ञा इस प्रकार दिया है –

अर्थशास्त्रमिदं प्रोक्तं धर्मशास्त्रमिदं महत्।
कामशास्त्रमिदं प्रोक्तं व्यासेनामितबुद्धिना।।[2]

कुछ विद्वानों के अनुसार यह ग्रन्थ अनेक शताब्दियों में विकसित हुआ है। बहुत प्राचीनकाल से अनेक गाथाएँ तथा आख्यान इस देश में प्रचलित थे, जिनमें कौरवों तथा पाण्डवों की वीरता का वर्णन किया गया था। अथर्ववेद में परीक्षित का आख्यान प्राप्त होता है। अन्य वैदिक ग्रन्थो में भी यत्र–तत्र महाभारत के वीर पुरुषों की बातें उल्लेखित मिलती हैं। इन्हीं सब गाथाओं तथा आख्यानों को एकत्र करके महर्षि वेद व्यास ने जिस काव्य को रूप दिया है, वही महाभारत है।

पं. बलदेव उपाध्याय लिखते हैं– कि इस ग्रंथ का उद्देश्य कौरवों तथा पाण्डवों का ऐतिहासिक वर्णन ही इस संबंध में नही अपितु हमारे हिन्दू धर्म का विस्तृत एवं पूर्ण चित्रण भी इसका मुख्य प्रयोजन है। महाभारत का शांतिपर्व जीवन की समस्याओं को सुलझाने का कार्य हजारों वर्षों से करता आ रहा है। इसलिए इस ऐतिहासिक ग्रन्थ को हम अपना धर्म–ग्रन्थ मानते आए हैं, जिसका पठन–पाठन, श्रवण–मनन सब प्रकार से यह कल्याण कारक है। इस ग्रन्थ का सांस्कृतिक मूल्य भी कम नहीं है। सच तो यह है कि केवल इसी ग्रन्थ के अध्ययन से हम अपनी संस्कृति के शुद्ध स्वरूप का ज्ञान प्राप्त कर सकते है।

महाभारतकालीन रीति–रिवाज एवं रहन–सहन :– महाभारतकालीन रीति–रिवाज एवं रहन–सहन को निम्न बिंदुओं पर समझा जा सकता है जिसका वर्णन इस प्रकार है–

(अ) सामाजिक जीवन :– महाभारतकालीन सामाजिक जीवन को अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से निम्नलिखित शीर्षकों में बाँटा जा सकता है–

1. **परिवार एवं समाज :–** व्यक्ति परिवार की इकाई होता है, और परिवार समाज की। महाभारतकालीन समाज पुरुष – प्रधान समाज था, और परिवार पितृ – प्रधान। पिता परिवार का मुखिया होता था। महाभारतकाल में संयुक्त–परिवार (श्रवपदज थ्ंउपसल) की प्रथाथी। महाभारत में संयुक्त–परिवार का उल्लेख मिलता है। कौरव तथा पाण्डव एक ही परिवार के सदस्य थे तथा एक ही आय पर आधारित थे। परिवार में माता–पिता, दादा–दादी, काका–काकी, भाई–बहन, पुत्र–पुत्री, भतीजा–भतीजी इत्यादि रहते थे। कदाचित् बहुपुत्र और बहुपौत्रीण होना सौभाग्य समझा जाता था। प्रत्येक परिवार किसी न किसी ऋषि को अपना आदि पुरुष मानता था। वह आदि पुरुष उत्पन्न संतान का 'गोत्र' कहलाता था। सगोत्र स्त्री–पुरुष भाई–बहन समझे जाते थे। इस युग में व्यापार का क्षेत्र बढ़ जाने से लोग संयुक्त परिवार से पृथक होकर अपनी आजीविका प्राप्त करने के लिए बाहर जाने लगे थे। कर्मफल के सिद्धान्त ने भी व्यक्तिवाद और पृथक परिवार की भावना को उत्पन्न किया होगा। इस विघटन के बावजूद भी समाज में संयुक्त परिवार की प्रथा ही लागू रही। हाँ, इतना अवश्य हुआ कि 'कुलप' के अधिकारों में कुछ कमी अवश्य आ गयी। इस काल में स्त्रियाँ सामान्यतः पुरुषों के अधीन थीं। महाभारत के अध्ययन से हमें तत्कालीन सामाजिक जीवन का यथार्थ ज्ञान प्राप्त होता है। महाभारतकालीन समाज पुरुष–प्रधान समाज था। अतः इस काल में नारियों की अपेक्षा पुरुषों को अधिक अधिकार प्राप्त थे। स्त्रियाँ सम्पत्ति के अधिकार से वंचित थीं। स्त्री के धन पर पिता या पति का अधिकार होता था।
2. **वर्ण–व्यवस्था :–** महाभारतकालीन समाज वर्णों में विभक्त था, और वर्ण जातियों में। वर्ण चार थे – ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। इनके अतिरिक्त भी समाज का एक वर्ग ऐसा था, जो निषाद या अन्त्यज के नाम से जाना जाता था, और नगर तथा ग्राम के बाहर निवास करता था। चूँकि महाभारतकाल वैदिककाल के अन्तर्गत आता है, अतः इस काल में वेद तथा वैदिक सिद्धान्तों का बड़ा महत्व था। महाभारतकालीन समाज–'**वेदोऽखिलो धर्ममूलम**' के सिद्धान्त पर विश्वास करता था। और ऋग्वेद में कहा गया है–

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहूराजन्यः कृतः।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां भूद्रो अजायत।।[3]

अर्थात् ''इस विराट पुरुष के मुख से (ब्रह्मविद्) ब्राह्मण, भुजाओं से (शौर्यवान्) क्षत्रिय, ऊरू प्रदेश (जाँघों) से (वितरण कर्ता) वैश्य और पैरों से (श्रमशील) शूद्रवर्णों की उत्पत्ति हुई। ''महाभारत के भीष्मपर्व में भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं–

चातुर्वर्ण्यं मया सृश्टं गुणकर्मविभागशः।
तस्य कर्तारमपि मां विद्धयकर्तारमव्ययम्।।[4]

''मेरे द्वारा गुणों और कर्मों के विभागपूर्वक चारों वर्णों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र) की रचना की गई है। उस–(सृष्टि–रचना आदि) का कर्ता होने पर भी मुझ अव्यय (अविनाशी) परमेश्वर को तू अकर्ता जान।''

वर्ण–व्यवस्था में ब्राह्मणों का स्थान सबसे पहला, क्षत्रियों का दूसरा, वैश्यों का तीसरा तथा शूद्रों का चौथा था। उस युग में ब्राह्मणों का बहुत अधिक महत्व था, उसे पृथ्वी का देवता समझा जाता था। 'महाभारत' में ब्राह्मणों के महत्व को बताते हुए राजा ययाति देवयानी से कहते हैं–

एकदेहोद्भवा वर्णाश्चत्वारोऽपि वराङ्गने।
पृथग्धर्माः पृथक्छौचास्तेशां तु ब्राह्मणो वरः।।[5]

''वराङ्गने! एक ही परमेश्वर के शरीर से चारों वर्णों की उत्पत्ति हुई है; परन्तु सबके धर्म और शौचाचार अलग–अलग हैं। ब्राह्मण उन सब वर्णों में श्रेष्ठ हैं।''

उस काल में ब्राह्मण अवध्य माना जाता था। चारों वर्णों के अपराध के लिए अलग–अलग दण्ड का विधान था। राजा का कार्य चारों वर्णों को उनके अपने–अपने धर्मों का पालन करवाना था। पालन नहीं करने पर राजा उसे दण्डित करता था। फिर भी उस काल में यह देखने को मिलता है कि कई लोग अपने वर्ण एवं जाति के नियम के विपरीत कार्य करते थे। जैसे कि आचार्य द्रोण ब्राह्मण होकर भी क्षत्रिय या योद्धा का कार्य करते थे, कर्ण सूत पुत्र होते हुए भी महारथी कहलाता था। विदुर दासी पुत्र होते हुए भी राजा धृतराष्ट्र के प्रधान मन्त्री (अमात्य) थे। महाभारतकाल में वर्ण–व्यवस्था का नियम ऋग्वैदिककाल की अपेक्षा लचीला जान पड़ता है। महाभारतकाल में जाति–प्रथा की शुरुआत हो चुकी थी। गीता में भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन को उनके पूर्वजों के द्वारा सदा से किए जाने वाले कर्मों को ही करने का उपदेश देते हैं, तथा उसी को उसका कर्तव्य बताते हुए कहते हैं–

एवं ज्ञात्वा कृतं कर्म पूर्वैरपि मुमुक्षुभिः।
कुरु कर्मैव तस्मात्त्वं पूर्वैः पूर्वतरं कृतम्।।[6]

अर्थात् ''पूर्वकाल के मुमुक्षुओं ने भी इस प्रकार जानकर कर्म किए हैं, इसलिए तू भी पूर्वजों के द्वारा सदा से किए जाने वाले कर्मों को ही (उन्हीं की तरह) कर।'' संभवतः यही जाति प्रथा की शुरुआत थी।

3. **आश्रम–व्यवस्था :–** महाभारतकाल में भी (ऋग्वैदिककाल की तरह) मनुष्य के सम्पूर्ण जीवन को लगभग सौ वर्ष मान कर चार भागों में विभाजित किया गया था। प्रत्येक भाग में मनुष्य के अलग–अलग कर्तव्य निर्धारित किए गए थे; यही आश्रम–व्यवस्था के नाम से जाना जाता था। ये आश्रम चार थे–ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास। जन्म से पच्चीस वर्ष की आयु तक **ब्रह्मचर्य आश्रम**, पच्चीस से पचास वर्ष की आयु तक गृहस्थ आश्रम, पचास से पचहत्तर वर्ष की आयु तक वान प्रस्थ आश्रम, तथा पचहत्तर से मृत्यु तक संन्यास आश्रम माना जाता था। ब्रह्मचर्य आश्रम में व्यक्ति गुरुकुल में रहकर ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए गुरु से विद्या प्राप्त करता था। गुरुकुल, गुरु का आश्रम होता था, जो वन स्थली में होता था; जहाँ विद्यार्थी गुरु तथा प्रकृति के सानिंध्य रहकर अनेक प्रकार की विद्याओं के साथ–साथ जीवनोपयोगी कलाएँ भी सीखता था। श्रीकृष्ण तथा बलराम एवं सौ भाई कौरवों सहित पाँचो भाई पाण्डवों की शिक्षा गुरुकुल में ही हुई थी। गृहस्थ आश्रम में व्यक्ति विवाह करके संतानोत्पत्ति कर पितृ–ऋण से उऋण होता था और पचास वर्ष की उम्र तक सुख पूर्वक गृहस्थ–जीवन व्यतीत करता था। महाभारत में गृहस्थ आश्रम को सभी आश्रमों में श्रेष्ठ माना गया है; क्योंकि यही आश्रम सभी आश्रमों की जड़ है। इसके बाद आता है–वान प्रस्थ आश्रम। इसमें व्यक्ति पचास वर्ष की आयु पूर्ण करके तथा पोते का मुख देखने के पश्चात् कृषि, वाणिज्य, राज–काज आदि धन्धों से मुक्त हो कर अपनी होनहार सन्तान के कंधों पर इन का भार सौंप कर आत्म–चिन्तन तथा आध्यात्मिक साधना के लिए ग्राम व नगर से दूर वन में जाकर रहता था। तप–संयम और स्वाध्याय का

विशेष अभ्यास करना, जीवन को अधिक से अधिक प्राकृतिक बनाना इस आश्रम की विशेषता थी। वानप्रस्थ का अर्थ होता है–वन की ओर प्रस्थान। महाराज पाण्डु, सत्यवती, अम्बिका एवं अम्बालिका, धृतराष्ट्र, गान्धारी तथा कुन्ती अपने जीवन के अंतिम दिनों में वानप्रस्थी हो गए थे। **चतुर्थ तथा अंतिम आश्रम है – संन्यास** जब व्यक्ति पचहत्तर वर्ष की आयु पूर्ण कर लेता था, तब वह वानप्रस्थ से संन्यास आश्रम में प्रवेश करता था। इस आश्रम में व्यक्ति घर–बार तथा सब प्रकार के माया–मोह को त्याग कर मोक्ष (मुक्ति) के मार्ग पर चलता था। वह काम, क्रोध, लोभ, मोह तथा अहंकार से रहित हो संन्यासी का वेश धारण कर संसार में भ्रमण करते हुए अपने अनुभव तथा ज्ञान की रश्मि बिखेरता था। वह अकेला तथा एकाकी जीवन व्यतीत करता था। वह अपनी निन्दा से न तो दुःखी होता था, और न प्रशंसासे प्रसन्न। वह सबके प्रति सम–भाव रखता था।महाभारत के अनुसार महर्षि वेदव्यास तथा शुकदेव जी इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं।

4. **पुरुशार्थ** :– महाभारतकालीन लोग पुरुषार्थ पर विश्वास करते थे। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष, इन चारों (फलों) की प्राप्ति के लिए उद्यम या प्रयत्न करना ही पुरुषार्थ कहलाता है। ये संख्या में चार होने के कारण पुरुषार्थ–चतुष्टय भी कहलाते हैं। 'महाभारत' पुरुषार्थ का डिम्–डिम् घोष है। महाभारत में भाग्य की अपेक्षा पुरुषार्थ पर अधिक बल दिया गया है। द्रौपदी युधिष्ठिर को हाथ पर हाथ धरे रहने तथा भाग्य पर विश्वास करने के सीान पर पुरुषार्थ करने को कहती है। इसके लिए वह उसे उत्साहित तथा प्रेरित करती हुई कहती है–

यो हि दिश्टमुपासीनो निर्विचेश्टःसुखं भायेत्।
अवसीदेत् स दुर्बुद्धिरामो घट इवोदके।।[7]

अर्थात् ''जो खोटी बुद्धि वाला मनुष्य प्रारब्ध (भाग्य) का भरोसा रखकर उद्योग से मुँह मोड़ लेता है और सुख से सोता रहता है, उसका जल में रखे हुए कच्चे घड़े की भाँति विनाश हो जाता है।''

5. **संस्कार** :– महाभारतकाल में जन्म से लेकर मृत्यु के बाद तक व्यक्ति के सोलह संस्कार किए जाते थे, जो षोडश–संस्कार के नाम से प्रचलित थे। ये षोडश संस्कार इस प्रकार है –

1. गर्भाधान संस्कार	2. पुंसवन संस्कार	3. सीमन्तोन्नयन संस्कार	4. जातक संस्कार
5. नामकरण संस्कार	6. निष्क्रमण संस्कार	7. अन्नप्राशन संस्कार	8. चूड़ाकरण संस्कार
9. कर्णवेध संस्कार	10.विद्यारम्भ संस्कार	11.उपनयन संस्कार	12. वेदारम्भ संस्कार
13. केशान्त संस्कार	14. समावर्तन संस्कार	15. विवाहसंस्कार	16.अंत्येष्टि संस्कार।

6. **विवाह** :– महाभारतकाल में सोलह संस्कारों में से विवाह संस्कार एक महत्वपूर्ण संस्कार था। उस काल में आठ प्रकार के विवाह प्रचलित थे। महाभारत में लिखा है–'धर्मशास्त्र की दृष्टि से संक्षेप में आठ प्रकार के ही विवाह माने गए हैं–ब्राह्म, दैव, आर्ष, प्राजापत्य, आसुर, गान्धर्व, राक्षस तथा आठवाँ पैशाच। स्वायम्भुव मनु का कथन है कि इन में बादवालों की अपेक्षा पहले वाले विवाह धर्मानुकूल हैं।''

अष्टावेव समासेन विवाहा धर्मतः स्मृता।
ब्राह्मो दैवस्तथैवार्शः प्राजापत्यस्तथासुरः।।
गान्धर्वो राक्षसश्चैव पैशाचश्चाश्टमः स्मृतः।
तेशां धर्म्यान् यथापूर्वं मनुः स्वायम्भुवोऽब्रवीत्।।[8]

पूर्व कथित जो चार विवाह–ब्राह्म, दैव, आर्ष तथा प्राजापत्य हैं, उन्हें ब्राह्मणों के लिए उत्तम समझना चाहिए। ब्राह्म से लेकर गान्धर्व तक क्रमशः छः विवाह क्षत्रिय के लिये धर्मानुकूल माना जाता है। राजा दुष्यन्त शकुन्तला से कहता है– ''राजाओं के लिए तो राक्षस विवाह का भी विधान है। गान्धर्व और राक्षस – दोनों विवाह क्षत्रिय जाति के लिए धर्मानुकूल ही हैं।'' वैश्यों और शूद्रों में आसुर विवाह ग्राह्य माना गया है। अंतिम पाँच विवाहों में तीन तो धर्म सम्मत हैं और दो अधर्म रूप माने गए हैं। महाभारत के अनुसार राजा दुष्यन्त ने शकुन्तला से गान्धर्व विवाह किया था। श्रीकृष्ण ने रुखिमणी से तथा अर्जुन ने सुभद्रा से जो विवाह किया था, वह गान्धर्व एवं राक्षस विवाह का मिश्रित रूप था।

कन्या को वस्त्र एवं आभूषणों से अलंकृत करके सजातीय योग्य वर के हाथ में देना 'ब्राह्म' विवाह कहलाता है। अपने घर पर देव यज्ञ करके यज्ञ के अन्त में ऋत्विज को अपनी कन्या का दान करना 'दैव' विवाह कहा गया है। वर से एक गाय तथा एक बैल शुल्क के रूप में लेकर कन्या दान करना 'आर्ष' विवाह

बताया गया है। वर और कन्या दोनों साथ रहकर धर्माचरण करें, इस बुद्धि से कन्यादान करना 'प्राजापत्य' विवाह माना गया है। वर से मूल्य के रूप में बहुत सा–धन लेकर कन्या देना 'आसुर' विवाह माना गया है। वर और वधू दोनों एक–दूसरे को स्वेच्छा से स्वीकार करलें, यह 'गान्धर्व' विवाह है। युद्ध करक मार–काट मचाकर रोती हुई कन्या को उसके रोते हुए भाई–बन्धुओं से छीन कर ले आना 'राक्षस' विवाह माना गया है। जब घर के लोग सोए हों अथवा असावधान हों, उस दशा में कन्या को, उसकी अनिच्छा से चुरा लेना 'पैशाच' विवाह है।

महाभारत तथा अष्टाध्यायी में अविवाहित कन्या के लिए 'कुमारी' शब्द का प्रयोग मिलता है। 'महाभारत' में यज्ञ से उत्पन्न होती हुई द्रौपदी के लिए कहा गया है–

कुमारी चापि पाञ्चाली वेदीमध्यात् समुत्थिता।
सुभगा दर्शनीयाह्वी स्वसितायतलोचना।।[9]

उस काल में विवाह योग्य स्त्रियों को 'वर्या' कहा जाता था। विवाह की संस्था उस युग में पर्याप्त विकसित हो चुकी थी। संतान हेतु विवाह का माहात्म्य था। सम्पन्न तथा राजघरानों में बहुपत्नी प्रथा का प्रचलन था। वे एक से अधिक पत्नियाँ रखा करते थे।

महाभारतकाल में कहीं–कहीं बहुपतित्व प्रथा के भी प्रमाण मिलते हैं। द्रौपदी का पाँचो पाण्डवों से शादी करना इसका ज्वलन्त उदाहरण है। महाभारत आदि पर्व के अध्याय–195 में युधिष्ठिर द्वारा इस विवाह को उचित ठहराने के लिए दिए गए उदाहरणों से भी पता चलता है कि उस युग में कहीं न कहीं बहुपतित्व–प्रथा प्रचलन में जरूर रही होगी। युधिष्ठिर अपने तर्क में कहते हैं–पुराणों में भी सुना जाता है कि जटिला नाम वाली गौतम गोत्र की कन्या ने धर्मात्माओं में श्रेष्ठ सात ऋषियों के साथ विवाह किया था। इसी प्रकार कण्डु मुनि की पुत्री वार्क्षी ने भी तपस्या से पवित्र अन्तः करण वाले दस प्रचेताओं के साथ, जिनका एक ही नाम था, और जो आपस में भाई–भाई थे, विवाह–संबंध सीापित किया था।

श्रूयते हि पुराणेऽपि जटिला नाम गौतमी।
ऋशीनध्यासितवती सप्त धर्मभृतां वरा।।
तथैव मुनिजा वार्क्षी तपोभिर्भावितात्मनः।
संगताभूद् दश भ्रातृनेकनाम्नः प्रचेतसः।।[10]

7. **स्त्रियों की दशा :–** माता के रूप में स्त्रियों का इस युग में बहुत सम्मान था। समस्त गुरुओं में माता परम गुरु मानी जाती थी। महाभारत में युधिष्ठिर का वेद व्यास जी के प्रति कथन है–

गुरोर्हि वचनं प्राहुर्धर्म्यं धर्मज्ञसत्तम।
गुरुणां चैव सर्वेशां माता परमको गुरुः।।[11]

इसके बावजूद भी सामान्यतः स्त्रियों की दशा अत्यन्त दयनीय एवं सोचनीय थी। स्त्रियों को द्यूत एवं मदिरा की श्रेणी में रखा गया था। इसी काल में भारतीय नारी की प्रतीक द्रौपदी का बहुत बड़ा अपमान हुआ था। भरी सभा में उसका चीरहरण करने का असफल प्रयास भी किया गया था। उस काल में सभाओं एवं परिषदों में भाग लेने के लिए स्त्रियों पर प्रतिबन्ध राजपरिवार तथा धनीवर्ग में बहुपत्निक–प्रथा चल निकली थी। पिता की सम्पत्ति पर उसका कोई अधिकार न था। यहाँ तक कि उसके खुद के आय पर भी उसके पिता या पति का अधिकार माना जाने लगा था। चूँकि अविवाहित पुरुष यज्ञ नहीं कर सकता था, और यज्ञ उस काल की आवश्यक प्रथाथी, अतः विवाह उस काल में एक आवश्यक संस्कार था जिससे यज्ञ कर्म पूर्ण किया जा सके।

8. **स्वयंवर – प्रथा :–** उस युग में स्वयंवर प्रथा का भी प्रचलन था। अपनी इच्छा से अपना पति चुनने वाली स्त्रियाँ 'पतिवरा' कहलाती थीं। ऐसी स्त्रियों में सावित्री, देवयानी तथा दमयंती प्रमुख हैं। महाभारत के अनुसार उस युग में कुन्ती ने पाण्डु को तथा द्रौपदी ने अर्जुन को स्वयंवर में ही वरण किया था। काशि राज की तीनों कन्याओ अम्बा, अम्बिका और अम्बालिका को स्वयंवर स्थल से ही उठाकर भी 'महस्तिनापुर लाए थे और अपने अनुज विचित्र वीर्य से अम्बिका तथा अम्बालिका की शादी करा दिए थे।

9. **नियोग–प्रथा :–** महाभारतकाल में नियोग प्रथा प्रचलित थी। महाभारत में हमें नियोग प्रथा के प्रमाण मिलते हैं। नियोग–पद्धति से ही धृतराष्ट्र, पाण्डु तथा विदुर का जन्म हुआ था। विचित्र वीर्य की दोनों रानियों अम्बिका एवं अम्बालिका तथा एक दासी से महर्षि वेद व्यास ने नियोग–रीति से ही क्रमशः धृतराष्ट्र, पाण्डु तथा विदुर को पैदा किया था। पाँचो भाई पाण्डवों का जन्म भी नियोग प्रथा का ही परिणाम है। कुन्ती ने युधिष्ठिर, भीम एवं अर्जुन को तथा माद्री ने नकुल एवं सहदेव को क्रमशः धर्मराज (यमराज), पवनदेव, इन्द्र

देव तथा अश्विनी कुमारों से नियोग विधि से ही जन्म दिया था। नियोग विधि के अनुसार पत्नी अपने पति की मृत्यु, अस्वस्थता (रुग्णता) अथवा असमर्थता (नपुंसकता) की दशा में पर पुरुष से समागम कर संतान उत्पन्न कर सकती थी।

10. **सती प्रथा** :– पति की मृत्यु हो जाने पर पत्नी अपने पति के शव के साथ चिता में जलकर भस्म हो जाती थी, इसी को सती होना भी कहा जाता था और आज भी कहा जाता है। इसके पीछे एक रहस्य है। एक बार सती अपने पति (शिव) का अपने पिता (प्रजापति दक्ष) द्वारा अपमान होने पर यज्ञ कुण्ड में जलकर भस्म हो गई थी। क्योंकि अपमान भी एक प्रकार से व्यक्ति की मृत्यु ही है। उसी दिन से पति की मृत्यु हो जाने पर उसके शव के साथ पत्नी के जलकर भस्म हो जाने को सती होना कहा जाने लगा जो बाद में एक प्रथा के रूप में प्रचलित हो गया। हाँलाकि महाभारतकाल में यह प्रथा नहीं के बराबर थी। महाभारत में केवल माद्री को ही सती होना बताया गया है, उसके अलावा किसी अन्य स्त्री का उदाहरण प्राप्त नहीं होता है।
11. **जाति प्रथा** :– महाभारतकाल में जाति प्रथा ने वर्ण व्यवस्था के सीान को लेना प्रारम्भ कर दिया था। इस काल में अनेक जातियाँ अस्तित्व में आ गई थीं, जैसे चाण्डाल, निषाद, कोल, भील, किरात, आन्ध्र, पुण्ड्र, शबर, पुलिंद और मूतिव आदि कुछ अपवादों को छोड़कर व्यक्ति अपनी–अपनी जाति के लिए निर्धारित कार्यों को ही करते थे।
12. **बलि प्रथा** :– महाभारतकाल में बलि प्रथा प्रचलित थी। यज्ञ के अवसर पर बलि देने का भी विधान था। महाभारत में अश्वमेध, गोमेध, अजामेध, नरमेध आदि वर्णन मिलता है। अर्थात इस युग में घोड़े, बैल, भैंस, बकरे आदि की बलि दी जाती थी। 'महाभारत' में नर बलि का भी उल्लेख मिलता है। महाभारत के अनुसार मगध राज जरासंध ने बलि देने के लिए अनेक राजाओं को बन्दी बनाकर रखा था। घटोत्कच ने भी अपनी माता हिडिम्बा के आदेश पर भीम को बलि देने के लिए देवी माँ की गुफा में ले गया था।
13. **शिक्षा** :– महाभारतकाल में शिक्षा के क्षेत्र में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए। इस युग में सुसंगठित शिक्षण संस्थाओं की स्थापना हो चुकी थी। बड़े–बड़े आचार्य अपने आश्रमों में विद्यार्थियों को शिक्षा दिया करते थे, जिन्हें गुरुकुल कहा जाता था और जहाँ गुरु–शिष्य का सीधा सम्बन्ध रहता था। 'उपनयन' संस्कार के पश्चात् विद्यार्थियों की शिक्षा आरम्भ होती थी। गुरु उनके भोजन, वस्त्र एवं निवास का प्रबन्ध करते थे। शिक्षा निःशुल्क थी। विद्याध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी अपने गुरु को इच्छानुसार दक्षिणा देते थे। गुरु अपने विद्याथियों के शारीरिक, मानसिक, व्यावहारिक, आध्यात्मिक तथा व्यावहारिक विकास की ओर पूर्ण ध्यान देते थे। महाभारतकाल में कौरव–पाण्डव तथा कृष्ण–बलराम आदि की शिक्षा ऐसे ही गुरुकुल में हुई थी।
14. **मनोरंजन के साधन** :– महाभारतकालीन लोगों के मनोरंजन के प्रमुख साधन नृत्य एवं संगीत थे। संगीत में गायन, वादन तथा नृत्य तीनों का ही प्रचलित थी। तात्कालीन प्रमुख वाद्य यंत्र जिन्हें लोग बजाते थे–वीणा, ढोल, बाँसुरी आदि थे। संगीत के अतिरिक्त रथ–दौड़ भी अत्यन्त लोक प्रिय थी। पासों के द्वारा जुआ खेलना भी इस युग में मनोरंजन का एक प्रमुख साधन था।
15. **खान–पान (भोजन एवं पेय)** :– महाभारतकाल में दूध, दही, घी, चावल, जौ, बीन एवं सरसों के बीज आदि का खाने में व्यापक स्तर पर प्रयोग होता था। इस काल में मांस भी खूब खाया जाता था। सुरा का भी इस काल में प्रयोग होता था। 'महाभारत' में दुर्योधन द्वारा भात खाने का उल्लेख मिलता है। जो इस प्रकार है जिसमें धृतराष्ट्र दुर्योधन से कहते है कि–

आच्छादयसि प्रावारानश्नासि विशदौदनम्।
आजानेया वहन्त्यश्वाः केनासि हरिणः कशः।।[12]

अर्थात् तुम बहुमूल्य वस्त्र पहनते–ओढ़ते हो, बढ़िया विशुद्ध भात खाते हो तथा अच्छी जाति के घोड़े तुम्हारी सवारी में रहते हैं, फिर किस दुःख से तुम सफेद और दुबले हो गए हो?

महाभारतकाल में कई जगह खीर एवं खिंचड़ी खाने का भी उल्लेख है। धनी एवं सम्पन्न वर्ग के लोग खीर को मीठा बनाने के लिए शहद का तथा सामान्य जन गुड़ एवं गन्ने के रस का प्रयोग किया करते थे।

16. **वेश–भूशा एवं प्रसाधन** :– महाभारतकाल में लोगों द्वारा पहने जाने वाले वस्त्र या परिधान तीन प्रकार के थे – नीवी, वास एवं अधिवास। नीवी अन्त र्वस्त्र (न्दकमत ळंतउमदज) को कहा जाता था। नीवी के ऊपर पहने जाने वाले वस्त्र या परिधान को वास (स्वूमत ळंतउमदज) तथा सबसे ऊपर पहने या ओढ़े जाने वाले

वस्त्र को अधिवास (उत्तरीय) कहा जाता था। इस काल में पहनने तथा ओढ़ने के लिए ऊनी कपड़ों का भी प्रयोग किया जाता था। पुरुष धोती पहना करते थे तथा स्त्रियाँ साड़ी पहना करती थीं। स्त्री तथा पुरुष दोनों ही आभूषण धारण करते थे ये आभूषण सोने तथा चाँदी के बने होते थे। 'महाभारत' में होठों को रँगने का भी उल्लेख मिलता है तथा अंगराग का प्रयोग करने का भी ज़िक्र है।

17. **आवास :–** महाभारतकाल में धनी एवं राजघराने के लोग बड़े–बड़े भवनों में रहा करते थे एवं गरीब तथा सामान्य घराने के लोग मिट्टी तथा ईंटों से निर्मित सामान्य घरों में निवास करते थे। ऋषि–मुनि जंगलों या वनों में घॉस–फूँस से बने आश्रमों (कुटियों) में रहा करते थे। इस युग में स्थापत्य (भवन–निर्माण) कला का क़ाफी विकास हो चुका था। पुरोचन द्वारा निर्मित वारणावत का लाक्षागृह एवं मयासुर द्वारा बनाया गया खाण्डवप्रस्थ (इन्द्रप्रस्थ) का सभा भवन इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं।

(ब) आर्थिक जीवन :– महाभारतकालीन लोगों के आर्थिक जीवन को निम्नांकित शीर्षकों में विभाजित किया जा सकता है–

1. **कृशि :–** महाभारतकालीन लोगों का मुख्य व्यवसाय कृषि था। इस काल में खेती के तरीकों, बीज, फसल आदि के क्षेत्र में महत्वपूर्ण विकास हुआ। इस काल में खेती के लिए हल का प्रयोग किया जाता था। इसीलिए महाभारत में बलराम का एक नाम हलधर भी मिलता है; क्योंकि वे पहले खेती का काम संभाला करते थे। गेहूँ, चावल एवं जौ इस युग की प्रमुख फसलें थीं।
2. **पशु–पालन :–** पूर्व वैदिक काल की तरह महाभारतकाल में भी पशु–पालन अर्थव्यवस्था का प्रमुख आधार था। अधिक से अधिक गायों का पालना वैभव की निशानी समझा जाता था। इसीलिए महाभारत में श्रीकृष्ण का एक नाम गोपाल भी मिलता है; क्योंकि वे बचपन में गाय चराने का काम भी किया करते थे। इस युग में विराट का युद्ध गो–हरण के कारण ही हुआ था।
3. **उद्योग एवं व्यवसाय :–** महाभारतकाल तक अनेक व्यवसायों की उत्पत्ति हो चुकी थी।महाभारत से हमें जुलाहे, सुनार, कुम्हार, लुहार, चर्मकार, रथकार, मछुवारे, नर्तक आदि अनेक व्यवसायियों के विषय में जानकारी प्राप्त होती है। इसके अतिरिक्त ज्योतिषी, वैद्य आदि का भी उल्लेख मिलता है। इस काल के लोगों को सिर्फ सोने, चाँदी एवं अयस (लोहा) की ही नहीं, अपितु ताँबा, टिन, सीसा, कांसा आदि धातुओं की भी जानकारी थी तथा वे उनका प्रयोग भी करते थे। इन धातुओं का प्रयोग आभूषण, हथियार तथा औजार बनाने में किया जाता था। इस काल के लोग विनिमय के लिए निष्क (स्वर्ण मुद्रा) तथा शतमान (चाँदी का सिक्का) का प्रयोग करते थे।
4. **व्यापार तथा वाणिज्य :–** इस काल में आंतरिक एवं वैदेशिक दोनों ही प्रकार का व्यापार उन्नति पर था। सामान्यतः व्यापार विनिमय प्रणाली द्वारा ही होता था, किन्तु पूर्व वैदिक काल की तरह गाय भी विनिमय का माध्यम थी। इस युग की मुख्य मुद्रा निष्क एवं शतमान थी। निष्क का प्रयोग गले में पहनने के लिए हार के रूप में भी किया जाता था। इस युग में समुद्री व्यापार भी होता था। आंतरिक व्यापार में तथा यातायात के साधनों के रूप में बैलगाड़ियों तथा नावों का प्रयोग किया जाता था।

(स) धार्मिक जीवन :–

1. **यज्ञ :–**इस युग में वेदवाद के साथ–साथ कर्मकाण्ड का भी विकास हुआ, परिणामस्वरूप यज्ञ अत्यधिक खर्चीले एवं जटिल होने लगे। यज्ञ में बलि का महत्व भी बढ़ने लगा यज्ञों में पुरोहितों की संख्या भी बढ़ गयी थी। यज्ञ धीरे–धीरे आम जनता की पहुँच से बाहर होने लगा था। इस युग में यज्ञ भी विभिन्न प्रकार के होने लगे थे जैसे किराजसूय, अश्वमेध, वाजपेय आदि।
2. **आस्था एवं अन्ध–विश्वास :–** इस काल के लोग देवी–देवता, भूत–प्रेत, जादू–टोना आदि पर विश्वास रखते थे और इनके प्रकोप से बचने के लिए यज्ञ, पूजन–अर्चन (पूजा–पाठ), मनौती, टोटका आदि किया करते थे तथा प्राणियों की बलि भी दिया करते थे।
3. **देवता :–** ऋग्वैदिककाल के प्रमुख देवता इन्द्र, वरुण आदि अब उतने प्रधान न रहे। उनके स्थान पर ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव प्रमुख देवता बन गए। प्रजापति (ब्रह्मा) को यज्ञों का स्वामी माना गया। विष्णु को भी प्रधान यज्ञ–पुरुष माना जाने लगा। रुद्र की पूजा अब शिवजी, पशुपति व महादेव के रूप में होने लगी।

4. **दर्शन** :– कर्मकाण्ड की जटिलता एवं अत्यधिक यज्ञों का विपरीत प्रभाव हुआ। धीरे–धीरे विद्वान् एवं बुद्धिजीवी लोग धार्मिक रीति–रिवाजों के प्रति उदासीन होने लगे। अनेक क्षत्रिय व ब्राह्मण ज्ञान की खोज के लिए प्रयत्नशील हो गए फलस्वरूप उपनिषदों की रचना हुई। 'श्रीमद्भगवद्गीता' जो कि महाभारत का एक अंश है, में उपनिषदों का सार समाया हुआ है। इसमें आत्मा (जीव) को अजर–अमर तथा अविनाशी बताया गया है। आत्मा न तो जन्म लेती है और न मरती है। वह केवल अपना शरीर रूपी वस्त्र बदलती है। इस प्रकार इस युग में पुनर्जन्म के सिद्धान्त का प्रतिपादन हुआ।''

न जायते म्रियते या कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।
वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।।[13]

उपसंहार :– यद्यपि आर्य संस्कृति ने इस युग तक काफी उन्नति कर ली थी, किन्तु महाभारतकालीन संस्कृति ऋग्वैदिक–संस्कृति की तुलना में भौतिकता की ओर अधिक अग्रसर थी। महाभारतकाल में सर्वाधिक एवं महत्वपूर्ण प्रगति धार्मिक एवं दार्शनिक क्षेत्र में हुई थी। 'श्रीमद्भगवद्गीता' जैसा अनुपम धार्मिक एवं दार्शनिक ग्रन्थ इसी काल की देन है। सांस्कृतिक दृष्टि से देखा जाय तो इस युग में भारतीय जीवन एवं विचार–धारा ने वह मार्ग अपनाया जिसका सदैव अनुगमन किया गया और आज भी किया जा रहा है। इस युग में नगरीय–सभ्यता का विकास प्रारम्भ हुआ। सामान्य घरों के स्थान पर लोग बड़े–बड़े महल बनाना शुरु किए तथा उन में रहने लगे इस प्रकार महाभारतकालीन रीति–रिवाजों रहन–सहन को उपर्युक्त बिंदुओं पर स्पष्ट रूप से समझा जा सकता है जिसकी कुछ झलक आज भी आधुनिक भारत में हमें यत्र–तत्र दिखलायी पड़ती है।

संदर्भ–सूची :–

1. महर्षि वेदव्यास कृत महाभारत (संवत् 2077), प्रथम खण्ड, गीताप्रेसगोरखपुर (उ.प्र.), आदिपर्व, अध्याय–62, श्लोक–53
2. महर्षि वेदव्यास कृत महाभारत (संवत् 2077), प्रथम खण्ड, गीताप्रेस गोरखपुर (उ.प्र.), आदिपर्व, अध्याय–2, श्लोक–383
3. ऋग्वेद संहिता, भाग–4, संपादक–पं. श्रीराम शर्मा आचार्य, युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट, गायत्री तपोभूमि, मथुरा (उ.प्र.), मण्डल–10, सूक्त–90, मंत्र–12
4. महर्षि वेदव्यास कृत महाभारत (संवत् 2077), तृतीय खण्ड, गीताप्रेस गोरखपुर (उ.प्र.), भीष्मपर्व, अध्याय–28, श्लोक–13
5. महर्षि वेदव्यास कृत महाभारत (संवत् 2077) प्रथम खण्ड, गीताप्रेस गोरखपुर (उ.प्र.) आदिपर्व, अध्याय–81, श्लोक–20
6. महर्षि वेदव्यास कृत महाभारत (संवत् 2077), तृतीय खण्ड, गीताप्रेस गोरखपुर (उ.प्र.) भीष्मपर्व, अध्याय–28, श्लोक–15
7. महर्षि वेदव्यास कृत महाभारत (संवत् 2077), द्वितीय खण्ड, गीताप्रेस गोरखपुर (उ.प्र.), वनपर्व, अध्याय–32, श्लोक–14
8. महर्षि वेदव्यास कृत महाभारत (संवत् 2077), प्रथम खण्ड, गीताप्रेस गोरखपुर (उ.प्र.) आदिपर्व, अध्याय–73, श्लोक–8, 9
9. महर्षि वेदव्यास कृत महाभारत (संवत् 2077), प्रथम खण्ड, गीताप्रेस गोरखपुर (उ.प्र.) आदिपर्व, अध्याय–166, श्लोक–44
10. महर्षि वेदव्यास कृत महाभारत (संवत् 2077), प्रथम खण्ड, गीताप्रेस गोरखपुर (उ.प्र.), आदिपर्व, अध्याय–195, श्लोक–14, 15
11. महर्षि वेदव्यास कृत महाभारत (संवत् 2077), प्रथम खण्ड, गीताप्रेस गोरखपुर (उ.प्र.),आदिपर्व, अध्याय–195, श्लोक–16
12. महर्षि वेदव्यास कृत महाभारत (संवत् 2077), प्रथम खण्ड, गीताप्रेस गोरखपुर (उ.प्र.), सभापर्व, अध्याय–49, श्लोक–9
13. महर्षि वेदव्यास कृत महाभारत (संवत् 2077), तृतीय खण्ड, गीताप्रेस गोरखपुर (उ.प्र.), भीष्मपर्व, अध्याय–26, श्लोक–20, 22